International Journal of Applied Research 2017; 3(11): 387-391

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(11): 387-391
www.allresearchjournal.com
Received: 17-09-2017
Accepted: 19-10-2017

डॉ० गीता पाण्डेय
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग मैत्रेयी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली भारत

Correspondence
डॉ० गीता पाण्डेय
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग मैत्रेयी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली भारत

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों में अभिव्यक्त जातिगत वैषम्य तथा गांधीवादी दृष्टि

डॉ० गीता पाण्डेय

प्रस्तावना

समाज और मनुष्य दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, दोनों की सार्थकता साथ रहने में है। समाज में जो भी उतार-चढ़ाव एवं परिस्थितिगत बदलाव आते हैं उनका प्रभाव समाज पर अवश्य पड़ता है। समाज इन सम-विषम परिवर्तनों से स्वयं को नए साँचे में ढ़ालता भी है तो कहीं- कहीं इन बदलावों को अपनाने के विरोध में भी खड़ा हो जाता है। समाज के ये परिवर्तन सम और विषम दोनों प्रकार के होते हैं। जो परिवर्तन समाज के हित में नहीं होते हैं वे विषम कहलाते हैं। इस विषमता की अनेक परिस्थितियां हैं, जैसे जातिगत विषमता, स्त्री-पुरुष संबंधों में विषमता, आर्थिक और सामाजिक विकास में विषमता। इस विषमता को समाज से निकालने के लिए समय-समय पर अनेकों समाज-सुधारक और महापुरुषों ने कदम उठाए हैं। समाज-सुधार और नैतिक उत्थान से इन विषमताओं को काफी हद तक साम्यता में लाने का प्रयास रहता है। समाज के सामाजिक और नैतिक उत्थान में महात्मा गांधी जी का नाम अविस्मरणीय है, उन्होंने समाज सुधार के लिए अनेक प्रकार से अथक परिश्रम किया, एक तरफ जहाँ गांधी जी का योगदान राजनीतिक मंच पर महत्वपूर्ण है, वहीं सामाजिक धरातल पर भी वह अमिट है। गांधी जी ने छुआछूत, स्त्री-दशा, विधवा-विवाह, वर्णांतर विवाह, दहेज समस्या आदि को समाज में एक स्वस्थ धरातल देने का प्रयास किया। लेकिन अस्पृश्यता,जातिगत भेदभाव, स्त्री उत्थान की समस्या आज तक बनी हुई है, इन समस्याओं ने समाज को वर्गों में विभाजित कर दिया है, तथा वर्गों वर्णों की यह खाई इतनी बढ़ती जा रही है इसे पाटना बड़ा ही मुश्किल जान पड़ता है। गांधीजी का विचार था कि यह जो जातिगत वैषम्य है, वह हिंदू धर्म का अंग नहीं है वह तो इस धर्म का कलंक है

जिसको हटाने का प्रयास प्रत्येक हिंदू को करना है। वे मानते थे की अस्पृश्यता अथवा छुआछूत हमारे समाज में परंपरा का हिस्सा कभी नहीं रही- "मैं यह मानने से इन्कार करता हूँ कि वह हमारे समाज में स्मरणातीत काल से चली आई है। मेरा ख्याल है कि अस्पृश्यता की यह घृणित भावना हम

लोगों में तब आयी होगी जब हम अपने पतन की चरम सीमा पर रहे होंगे और तब से यह बुराई हमारे साथ लग गई और आज भी लगी हुई है। मैं मानता हूं कि यह एकदम भयंकर अभिशाप है और यह अभिशाप जब तक हमारे साथ रहेगा तब तक मुझे लगता है कि इस पावन भूमि में हमें जब जो तकलीफ सहनी पड़े वह हमारे अपराध का जिसे आज हम कर रहे हैं उचित दंड होगा।"[1]

गांधीजी ने जातिगत वैषम्य को अमानवीय माना है और यही अस्पृश्यता या वैषम्य व्यक्ति के जन्म से संबंधित हो तो वह पाप का रूप धारण कर लेती है। "जन्म के कारण मानी गई इस अस्पृश्यता में अहिंसा, धर्म और सर्व भूतात्मभाव का निषेध हो जाता है..... इसने धर्म के बहाने लाखों करोड़ों की हालत गुलामों जैसी कर डाली है।"[2]

साहित्यिक विधाओं में नाटक सर्वाधिक प्रभावोत्पादक विधा है, जिससे दर्शक समाज नाटक की संवेदना से प्रत्यक्ष जुड़ जाता है। ऐसी विधा में जब सामाजिक विषयों का चयन किया जाता है तो वह सहृदय से सीधे तादात्म्य स्थापित करता है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों की पृष्ठभूमि में आजादी के बाद स्वतंत्र देश के सपने थे, जो स्वातंत्रता के बाद छिन्न-भिन्न हो गए। यद्यपि देश में कई विकास योजनाएँ एवं नीतियों का निर्धारण किया गया और यह प्रतीत हुआ कि बड़ी ही तीव्र गति से विकास हो रहा है, परंतु जिस तरह की स्थितियाँ और परिस्थितियाँ बनी उससे चारों तरफ मोह-भंग की स्थिति उत्पन्न हो गई। इस मोहभंग की पीड़ा से समाज में तमाम तरह की विकृतियां उत्पन्न हो गईं, समाज की इन विकृतियों ने कई तरह की सामाजिक विषमताओं का रूप धारण कर लिया। समाज में स्वार्थ महत्वपूर्ण होने लगा, मानव स्वार्थी और आत्म-केंद्रित होता चला गया, जिससे अनेक विषमताएं उत्पन्न हुईं, जैसे- अवसरवाद, भ्रष्टाचार अपराधीकरण, मूल्यहीनता, स्त्री-उत्थान की समस्या, दहेज-समस्या, जातिगत विषमता आदि। इन सभी विषमताओं को स्वतंत्र्योत्तर हिंदी नाटक में पर्याप्त स्थान दिया गया।

स्वतंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों में सामाजिक विषमताओं को पर्याप्त स्थान प्राप्त हुआ। छुआछूत की समस्या को उठाते हुए देवराज दिनेश ने 'रावण' नाटक में जातिगत वैषम्य को दूर कर समानता लाने का प्रयास किया। नाटक में श्री राम जंगल में शबरी के आश्रम में जाते हैं तब शबरी उनसे कहती है कि मेरा आतिथ्य ग्रहण करने में सब घबराते हैं, इस पर राम कहते हैं कि "मैं तो मनुष्य मात्र को ही एक दृष्टि से देखता हूं मैं जातीयता का विचार नहीं करता जातियां उनके कार्यों पर निर्धारित होती हैं।"[3] इससे स्पष्ट है कि समाज की इन जर्जर विषमताओं को तुरंत ही त्याग देना चाहिए।

ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने भी 'माटी जागी रे' नाटक में छुआछूत की समस्या को समाप्त कर समाज में बदलाव का बिगुल बजाया है। लक्ष्मी नारायण लाल ने 'गंगा माटी' नाटक में जातिगत समस्या का चित्रण किया और नवीन परिवर्तन को दिखाया है-

"गंगा- एक ही बर्तन में दोनों। पिताजी देखेंगे तो क्या कहेंगे।

कमल- शहरों में कोई छुआछूत नहीं मानता। वहाँ कोई शुद्र- अशूद्र नहीं।

गंगा- वहाँ किसी से किसी का कोई संबंध भी नहीं।

कमल- संबंध, यहाँ भी नहीं।

गंगा- संबंध है तुम्हें पता नहीं।

कमल- हाँ, यही संबंध है। एक ऊंचा एक नीचा, एक छूत एक अछूत।

गंगा- यह अंतर मिटा देने से संबंध जुड़ जाता है? बाहर का अंतर मिटाने से भीतर का अंतर असंख्य गुना बढ़ जाता है। देखना ही है तो उसे देखो, जो बढ़ाता है इस अंतर को।"[4] इस प्रकार नाटक के माध्यम से नाटककार ने जातिगत समस्या के मूल पर चोट की है। नाटककार आनंद प्रकाश ने 'मास्टरजी' नाटक में अछूतोद्धार की समस्या को उठाया है। गांव के स्कूल मास्टर दीनानाथ गांव के हरिजन लोगों का पक्ष लेते हैं, जिसके कारण गांव के धनी व्यक्ति जीवन राम चौधरी उनके दुश्मन बन जाते हैं। परंतु दीनानाथ की विनम्रता के आगे झुकना पड़ता है, अंत में वे कहते हैं –"गांव में पक्का स्कूल बनाऊंगा और उसमें हरिजनों और ब्राह्मणों के बच्चे बूढ़े साथ-साथ पढेंगें।"[5]

इसी प्रकार 'एक सत्य हरिश्चंद्र' नाटक में समाज द्वारा किए जा रहे निम्न जाति के शोषण को प्रकट किया गया है-

"जीवन: वह काम वही कर सकता है, जिसमें आत्म-गौरव हो, आत्मज्ञान हो और आत्मविश्वास हो।

वृद्ध: ई का चीज है भइया?

जीवन: इसके लिए भीतर आग चाहिए। मैं पता लगा रहा हूँ , वह आग सिर्फ ऊंची जाति के लोगों में है। नीचे के लोगों में वह आग हजारों साल पहले कुचलकर बुझा दी गई है समझे? कि और समझाऊँ?"[6] इसी भांति शंकर शेष ने 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक के माध्यम से यह दिखाया है कि किस प्रकार ऊंची जातियों के अत्याचारों से निम्न जाति के लोगों की आत्मा को मार दिया जाता है। महाभारतकालीन गुरु द्रोणाचार्य द्वारा एकलव्य के अंगूठे को गुरु दक्षिणा में माँगना सदियों से चली आ रही वर्ण-व्यवस्था का परिणाम है। जहाँ प्रतिभा से ज्यादा जाति को महत्व दिया जाता है। नाटक में अर्जुन के संवाद सदियों की इस वर्ण-व्यवस्था की परंपरा को तोड़ना चाहता है-

"अर्जुन - गुरुदेव आपकी यह क्रूरता समझ में नहीं आई।

द्रोणाचार्य : क्यों?

अर्जुन :एकलव्य से अंगूठा क्यों माँगा?

द्रोणाचार्य :धर्म की व्यवस्था के लिए। जानते नहीं शूद्रों और वनवासियों को धनुर्विद्या की शिक्षा नहीं दी जा सकती। .....एकलव्य का अंगूठा बना रहने का मतलब समझते हो? धनुर्विद्या पर उसका अधिकार हो जाएगा। (विराम) शक्तिशाली होने के बाद ये क्षत्रियों से स्पर्धा करेंगे और परिणाम होगा वर्णाश्रम धर्म पर संकट। (विराम) उसका अंगूठा छीनकर मैं इन संभावनाओं को हमेशा की लिए समाप्त कर दूँगा।"[7] इस संवाद की प्रासंगिकता आज के समय में भी दृष्टिगत होती है। जातिगत समस्या और उसके समाधान को लेकर शंकर शेष के एक अन्य नाटक 'बाढ़ का पानी' नाटक में भी गांधीवादी विचारों का पुरजोर समर्थन किया गया है। नाटक का पात्र नवल गांधी जी के ही समान छुआछूत की समस्या को समाज से हटाना चाहता है। सभी जातियों को समान बताते हुए बटेश्वर कहता है- "देख गनपत, ना मैं ब्राह्मण हूँ ना मैं चमार, ना मैं हिंदू हूँ ना मुसलमान ना ईसाई हूँ ना पारसी। पर मैं सब हूँ और कुछ भी नहीं हूँ। मैं बारी-बारी हिंदू, मुसलमान, ईसाई बनकर देख चुका हूँ, पर मुझे तो कोई फर्क नहीं लगा रे। और अब मैं कुछ भी नहीं हूँ। ..... वहीं, जातिगत वैषम्य को समाप्त करने पर बल देते हुए बटेसर ठाकुर साहब से कहता है-

"बटेसर : भाई छीतू, ऐसी बातें ना करो। (ठाकुर से) ठाकुर साहब, भगवान ने तुमको मुसीबत में भी एक मौका दिया है, इन हरिजनों के घर आने का, अब तक इनके बारे में तुमने सुना ही है ,अब इन्हें अपनी आँखों से भी देख लो। इन्हें परख लो मुसीबत दिलों को पास लाती है। ठाकुर यह मौका

फिर शायद ही तुम्हारी जिंदगी में आए। इसका फायदा उठाओ।"[8] इस प्रकार नाटककार शंकर शेष अपने नाटक 'बाढ़ का पानी' द्वारा समाज से जातिगत वैषम्य को दूर करने का प्रयास किया है। गांधी जी जीवन भर इस कड़वाहट को मिटाने के लिए कटिबद्ध रहे। इस कटुतम वेदना की अनुभूति का साक्षात्कार करने के लिए वह स्वयं इस जाति में पैदा होने की इच्छा रखते थे-"यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो मुझे अछूत के घर में पैदा होना चाहिए जिससे मैं उनकी परेशानियों और दुखों का भागीदार हो सकूं, जो औरों पर थोपे गए हैं जिससे मैं ऐसी स्थिति में अपने आप को और अधिक मुक्ति दिला सकूं।"[9] गांधीजी के इस कथन में कितनी सच्चाई है, निःसन्देह छुआछूत एवं वैषम्य की भावना मानव समाज का भयानक शत्रु है, इसने समाज की जड़ों को कमजोर बना दिया है। गांधी जी ने इस बात को भलीभांति समझ लिया था उनके अनुसार- "अस्पृश्यता के साथ संग्राम एक धार्मिक संग्राम है, यह संग्राम मानव- सम्मान की रक्षा तथा हिंदू धर्म के बहुत ही बलवान सुधार के लिए है।"[10] गांधी जी ने पूरे जीवन जातिगत एवं सांप्रदायिक वैषम्य तथा वैमनस्य को मिटाने का भरसक प्रयत्न किया, वे चाहते थे कि सभी जातियों के बीच रोटी- बेटी का संबंध व्यवहार हो और विभिन्न धर्म संस्कृतियों के मध्य भेदभाव मिट जाए। गांधी जी ने हिंदू और मुसलमान को सदैव समान दृष्टि से देखा। उनके अनुसार हिंदू मुसलमान दोनों ही भारत के समान अधिकारी और दोनों सहोदर भाई समान थे।

नाटककार नरेंद्र मोहन के नाटक 'कहे कबीर सुनो भाई साधो' में जातिगत वैषम्य को ऐतिहासिक धरातल पर प्रस्तुत किया है। लेकिन जातिगत वैषम्य की यह विभीषिका आज के युग से भी समान रूप में जुड जाती है-

"आदमी 2- तकलीफ़ का इतिहास (व्यंग्य से हँसता है)

आदमी 1- अरे ,तकलीफ़ का इतिहास तुम खोजते रहो। हमें तो तकलीफ़ दिन रात कचोटती रहती है। जानते हो हम सैकड़ों वर्षो से इसी तरह पिटते चले आ रहे हैं ,क्या कसूर है हमारा यही ना कि हम नीच जाति के हैं। चमार हैं।"[11]

प्रस्तुत नाटक में कबीर के माध्यम से समाज में फैले जातिगत वैषम्य और अत्याचार - अनाचार को समाप्त कर स्वस्थ मानव सभ्यता का विकास करने का प्रयास किया है।

इसी प्रकार उनके एक अन्य नाटक 'अभंग गाथा' में भी जातिगत वैषम्य को दूर करने का प्रयास किया गया है-

"तुकाराम- कोई है जो मुझे बताए ,'वर्ग के गर्व से कौन भया पावन' तुम्हारे मुँह से बड़ी-बड़ी गालिओं की झड़ी बरसती है तो तुम्हारा ब्राह्मणत्व् का तेज कितना फैलने लगता है।

मुंबा जी- हाँ, फैलने लगता है। तुम कौन होते हो छोटे बड़े के भेद को मिटाने वाले?

तुकाराम - मुंबा जी , यह कोई हाट बाजार नहीं है छोटे बड़े का भेद तुम्हारा बनाया हुआ है।

मुंबा जी- कान खोलकर सुन ब्राह्मण भगवान विष्णु के मुख से पैदा हुए हैं, शूद्र पैरों से।

तुकाराम- ब्राह्मण हो या शूद्र, मानुष जात एक है, छोटे-बड़े में बंटकर कोई सत्य नहीं टिकता।"[12]

समग्रतः जातिगत वैषम्य की समस्या को लेकर स्वतन्त्रता पूर्व से ही कई तरह से आंदोलन चलते आए हैं। सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक स्तर पर विभिन्न तरह से इसे दूर करने का प्रयास भी किया जाता रहा है। लेकिन जातिगत वैषम्य आज भी देश और समाज के लिए एक बड़ी समस्या बनी हुई है। यदपि यह समस्या इतनी प्रखर नहीं जितनी पहले रही है, फिर भी किसी न किसी रूप में यह विषमता आज भी विद्यमान है। इस संदर्भ में गाँधीवादी दृष्टि से प्रभाव ग्रहण करते हुए स्वातंत्र्योत्तर युग के नाटककारों ने जातिगत वैषम्य को अपने नाटकों में प्रस्तुत कर

उसे ख़तम या कमतर करने का प्रयास तो किया ही है। इसमें कोई संदेह नहीं।

संदर्भ

1. Speeches and writing of Mahatma Gandhi- पृष्ठ- 387
2. गांधी विचार दोहन- किशोरलाल मशरूवाला- पृष्ठ- 44
3. रावण -देवराज दिनेश, पृष्ठ-16
4. गंगा माटी -लक्ष्मीनारायण लाल, पृष्ठ 15
5. मास्टरजी -आनंद प्रकाश जैन - पृष्ठ -415- (हिन्दी नाटक कोश)
6. एक सत्य हरिश्चंद्र- लक्ष्मीनारायण लाल- पृष्ठ- 19-20
7. एक और द्रोणाचार्य- शंकर शेष- पृष्ठ- 53-54
8. बाढ़ का पानी शंकर शेष रचनावली- पृष्ठ- 117
9. यंग इंडिया- महात्मा गाँधी (4 मई 1921)
10. प्रार्थना प्रवचन- भाग 1
11. कहे कबीर सुनो भाई साधो, नरेंद्र मोहन- पृष्ठ -25
12. अभंग गाथा- नरेंद्र मोहन- पृष्ठ- 58-59